International Journal of Web of Multidisciplinary Studies
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal)
website: https://ijwos.com OPEN ACCESS E-ISSN : 3049-2424
Volume 3 Issue 3 , March 2026
DOI: https://doi.org/10.71366/ijwos03032633129

औपनिवेशिक काल में औद्योगिक विकास में बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं की भूमिका का विश्लेषण

डॉ. रीना कुमारी
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्याल,भागलपुर

Article Info

Article History:

Published:19 March 2026

Publication Issue:
Volume 3, Issue 3
March-2026

Page Number:
415-423

Corresponding Author:
डॉ. रीना कुमारी

Abstract:

औद्योगिकीकरण किसी भी देश के आर्थिक विकास की आधारशिला माना जाता है, क्योंकि इसके माध्यम से उत्पादन, व्यापार, रोजगार तथा आय के स्रोतों में व्यापक वृद्धि होती है। किसी भी औद्योगिक व्यवस्था के सुचारु विकास के लिए केवल प्राकृतिक संसाधन और श्रमशक्ति ही पर्याप्त नहीं होते, बल्कि पूँजी, वित्तीय संसाधन तथा संगठित बैंकिंग प्रणाली की भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बैंकिंग और वित्तीय संस्थाएँ उद्योगों को पूँजी उपलब्ध कराती हैं, निवेश को प्रोत्साहित करती हैं तथा व्यापारिक लेन–देन को सुरक्षित और व्यवस्थित बनाती हैं। इसी कारण आधुनिक अर्थव्यवस्था में बैंकिंग व्यवस्था को औद्योगिक विकास का एक प्रमुख आधार स्तंभ माना जाता है। भारत में औपनिवेशिक काल (1757–1947) के दौरान आधुनिक बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं का क्रमिक विकास हुआ, जिसने देश की आर्थिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया। इस काल में ब्रिटिश शासन ने भारत में आधुनिक बैंकिंग प्रणाली की शुरुआत की, जिसमें प्रारंभिक चरण में प्रेसीडेंसी बैंक, एजेंसी हाउस बैंक तथा बाद में संयुक्त–पूँजी बैंक स्थापित किए गए। इन संस्थाओं ने व्यापारिक लेन–देन को सरल बनाने, मुद्रा के प्रवाह को नियंत्रित करने तथा बड़े पैमाने पर पूँजी के संचय और निवेश को संभव बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणामस्वरूप औद्योगिक गतिविधियों के लिए आवश्यक वित्तीय आधार धीरे–धीरे विकसित होने लगा। हालाँकि यह भी सत्य है कि औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत विकसित बैंकिंग प्रणाली का मुख्य उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था का समग्र विकास नहीं, बल्कि ब्रिटिश व्यापारिक और साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति करना था। अधिकांश बैंक और वित्तीय संस्थाएँ ब्रिटिश व्यापारिक घरानों तथा विदेशी पूँजी के नियंत्रण में थीं, जो मुख्यतः निर्यात–उन्मुख व्यापार, कच्चे माल की खरीद तथा ब्रिटेन से आयातित वस्तुओं के व्यापार को वित्तीय सहायता प्रदान करती थीं। इसके परिणामस्वरूप भारतीय उद्योगों को प्रारंभिक चरण में अपेक्षित वित्तीय सहयोग नहीं मिल पाया और स्वदेशी उद्यमियों को पूँजी प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। फिर भी, इस औपनिवेशिक बैंकिंग ढाँचे के विकास ने भारतीय अर्थव्यवस्था में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किए। आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के कारण पूँजी के संचय और वितरण की नई प्रक्रियाएँ विकसित हुईं, जिससे उद्योगों की स्थापना, व्यापार के विस्तार तथा परिवहन और संचार जैसे सहायक क्षेत्रों में निवेश की संभावनाएँ बढ़ीं। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में कपड़ा, जूट, चाय, कोयला तथा लौह–इस्पात जैसे उद्योगों के विकास में बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं की भूमिका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है। साथ ही भारतीय उद्यमियों ने भी धीरे–धीरे स्वदेशी बैंकों और वित्तीय संस्थाओं की स्थापना कर औद्योगिक विकास के लिए पूँजी जुटाने का प्रयास किया।

इस प्रकार औपनिवेशिक काल में बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं का विकास एक विरोधाभासी प्रक्रिया थी। एक ओर यह ब्रिटिश आर्थिक हितों की पूर्ति का माध्यम था, वहीं दूसरी ओर इसने आधुनिक औद्योगिक ढाँचे के निर्माण के लिए आवश्यक वित्तीय आधार भी प्रदान किया। इसलिए भारत में औद्योगिकीकरण के इतिहास का अध्ययन करते समय बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं की भूमिका का विश्लेषण अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।

Keywords: औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था, बैंकिंग व्यवस्था का विकास, औद्योगिकीकरण, पूँजी संचय और निवेश

Copyright © 2025 The Author(s) : This is an open access article under the CC BY license (http://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/)

औपनिवेशिक काल में बैंकिंग व्यवस्था का विकास

भारत में आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का विकास मुख्यतः उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ, जब औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत व्यापार, प्रशासन और वित्तीय गतिविधियों के विस्तार के लिए एक संगठित बैंकिंग व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गई। औपनिवेशिक शासन से पूर्व भारत में वित्तीय लेन–देन की व्यवस्था मुख्य रूप से पारंपरिक साहूकारों, महाजनों, सर्राफों तथा बड़े व्यापारी घरानों द्वारा संचालित होती थी।[1] ये संस्थाएँ स्थानीय स्तर पर ऋण प्रदान करती थीं और व्यापारिक गतिविधियों को सीमित रूप में वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती थीं। यद्यपि इनकी भूमिका भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण थी, फिर भी इनके पास आधुनिक बैंकिंग की तरह संगठित ढाँचा, नियामक व्यवस्था तथा व्यापक वित्तीय नेटवर्क नहीं था। ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ ही विदेशी व्यापार के विस्तार, औपनिवेशिक प्रशासन के वित्तीय प्रबंधन तथा बड़ी मात्रा में पूँजी के लेन–देन को व्यवस्थित करने के लिए आधुनिक बैंकिंग संस्थाओं की स्थापना की गई। इस प्रक्रिया ने भारत की आर्थिक संरचना में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन की शुरुआत की और बैंकिंग प्रणाली धीरे–धीरे अधिक संगठित और औपचारिक रूप धारण करने लगी।[2]

औपनिवेशिक काल में आधुनिक बैंकिंग व्यवस्था के विकास की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम प्रेसीडेंसी बैंकों की स्थापना थी। इस क्रम में 1806 ई. में बैंक ऑफ बंगाल की स्थापना की गई, जो भारत का पहला संगठित आधुनिक बैंक माना जाता है। इसके बाद 1840 ई. में बैंक ऑफ बॉम्बे तथा 1843 ई. में बैंक ऑफ मद्रास की स्थापना की गई। इन तीनों बैंकों को सामूहिक रूप से प्रेसीडेंसी बैंक कहा जाता था, क्योंकि ये क्रमशः बंगाल, बॉम्बे और मद्रास प्रेसीडेंसी क्षेत्रों में बैंकिंग गतिविधियों के प्रमुख केंद्र थे। इन बैंकों को ब्रिटिश सरकार का संरक्षण प्राप्त था और इनका संचालन मुख्यतः यूरोपीय व्यापारिक घरानों तथा औपनिवेशिक अधिकारियों के नियंत्रण में होता था।[3] इन बैंकों का प्रमुख कार्य सरकारी वित्तीय लेन–देन का संचालन करना, औपनिवेशिक प्रशासन के लिए खजाने का प्रबंधन करना तथा व्यापारिक गतिविधियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना था। इसके अतिरिक्त ये बैंक व्यापारिक बिलों के विनिमय, जमा स्वीकार करने, ऋण प्रदान करने तथा मुद्रा के प्रवाह को नियंत्रित करने जैसी आधुनिक बैंकिंग सेवाएँ भी प्रदान करते थे। इस प्रकार प्रेसीडेंसी बैंकों ने भारत में आधुनिक बैंकिंग व्यवस्था की नींव रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और व्यापार तथा उद्योग के लिए आवश्यक वित्तीय ढाँचे के निर्माण की दिशा में पहला कदम सिद्ध हुए। हालाँकि इन प्रेसीडेंसी बैंकों की गतिविधियाँ मुख्यतः यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों, ब्रिटिश व्यापारिक घरानों तथा औपनिवेशिक प्रशासन तक ही सीमित थीं। भारतीय व्यापारियों, कारीगरों और नवोदित उद्योगपतियों को इन बैंकों से अपेक्षित वित्तीय सहायता नहीं मिल पाती थी।[4] इसका कारण यह था कि औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियाँ मुख्यतः ब्रिटिश व्यापारिक हितों की पूर्ति के लिए बनाई गई थीं। इसलिए बैंकिंग संस्थाएँ भी उन्हीं क्षेत्रों को प्राथमिकता देती थीं, जिनसे ब्रिटेन को प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ प्राप्त होता था, जैसे – कच्चे माल का निर्यात, विदेशी व्यापार तथा यूरोपीय कंपनियों के औद्योगिक उद्यम। इसके परिणामस्वरूप भारतीय उद्यमियों को पूँजी की कमी का सामना करना पड़ता था और उन्हें अक्सर पारंपरिक साहूकारों तथा महाजनों पर निर्भर रहना पड़ता था। फिर भी इन बैंकों की स्थापना से भारत में संगठित बैंकिंग प्रणाली की शुरुआत हुई और वित्तीय लेन–देन अधिक व्यवस्थित और सुरक्षित होने लगे, जिससे आर्थिक गतिविधियों को एक नया आधार प्राप्त हुआ।[5]

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में बैंकिंग व्यवस्था को अधिक सुदृढ़ और संगठित बनाने के उद्देश्य से एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। 1921 ई. में इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना की गई, जिसके अंतर्गत तीनों प्रेसीडेंसी बैंकों – बैंक ऑफ बंगाल, बैंक ऑफ बॉम्बे और बैंक ऑफ मद्रास का विलय कर दिया गया। इस नए बैंक ने औपनिवेशिक भारत में बैंकिंग गतिविधियों को एकीकृत और संगठित स्वरूप प्रदान किया। इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया उस समय देश का सबसे बड़ा वाणिज्यिक बैंक बन गया और इसने सरकारी वित्तीय लेन–देन के प्रबंधन, बड़े व्यापारिक सौदों के वित्तपोषण तथा बैंकिंग सेवाओं के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके माध्यम से देश के विभिन्न भागों में शाखाएँ स्थापित की गईं, जिससे बैंकिंग सेवाएँ पहले की तुलना में अधिक व्यापक रूप से उपलब्ध होने लगीं।[6] यद्यपि यह बैंक औपचारिक रूप से केंद्रीय बैंक नहीं था, फिर भी यह लंबे समय तक सरकार का बैंक, व्यापारिक बैंक और आंशिक रूप से केंद्रीय बैंक की भूमिका निभाता रहा। प्रेसीडेंसी बैंकों और इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया के अतिरिक्त औपनिवेशिक काल में कई निजी बैंक तथा विनिमय बैंक भी स्थापित किए गए। इन बैंकों का मुख्य उद्देश्य विदेशी व्यापार को वित्तीय सहायता प्रदान करना था। ये बैंक विशेष रूप से ब्रिटेन तथा अन्य यूरोपीय देशों के साथ होने वाले निर्यात–आयात व्यापार को संचालित करते थे और व्यापारिक बिलों के

विनिमय, विदेशी मुद्रा के लेन–देन तथा अंतरराष्ट्रीय भुगतान की व्यवस्था करते थे। इनके माध्यम से चाय, जूट, कपास, मसाले और खनिज जैसे भारतीय कच्चे माल के निर्यात को वित्तीय सहयोग मिलता था। इसके अतिरिक्त उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कुछ स्वदेशी बैंक भी स्थापित हुए, जिनका उद्देश्य भारतीय व्यापारियों और उद्योगपतियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना था। स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव से भारतीय पूँजीपतियों ने बैंकिंग क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयास किया और भारतीय स्वामित्व वाले बैंकों की स्थापना की, जिससे भारतीय उद्योगों को पूँजी उपलब्ध कराने की दिशा में कुछ प्रगति हुई।[7]

इस प्रकार औपनिवेशिक काल में बैंकिंग व्यवस्था का विकास एक क्रमिक और जटिल प्रक्रिया थी। प्रारंभ में यह व्यवस्था मुख्यतः ब्रिटिश व्यापारिक और औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए स्थापित की गई थी, किंतु समय के साथ–साथ इसने भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को भी प्रभावित किया। आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के विकास से पूँजी के संचय और वितरण की नई प्रक्रियाएँ विकसित हुईं, वित्तीय लेन–देन अधिक सुरक्षित और संगठित हुआ तथा व्यापार और औद्योगिक गतिविधियों के विस्तार के लिए एक आधार तैयार हुआ। इस प्रकार, यद्यपि औपनिवेशिक बैंकिंग व्यवस्था की सीमाएँ थीं, फिर भी उसने भारत में आधुनिक आर्थिक संरचना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[8]

वित्तीय संस्थाओं का उदय और विकास

औपनिवेशिक काल में भारत की आर्थिक संरचना में केवल बैंकिंग संस्थाओं का ही विकास नहीं हुआ, बल्कि इनके साथ–साथ विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाएँ और एजेंसियाँ भी विकसित हुईं, जिन्होंने व्यापार, उद्योग और निवेश संबंधी गतिविधियों को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के दौरान जब भारत में विदेशी व्यापार, औद्योगिक उत्पादन तथा पूँजी निवेश का विस्तार होने लगा, तब वित्तीय सेवाओं की आवश्यकता भी बढ़ने लगी। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए कई प्रकार की संस्थाएँ अस्तित्व में आईं, जिनमें एजेंसी हाउस, व्यापारिक कंपनियाँ, बीमा संस्थाएँ तथा निवेश एजेंसियाँ प्रमुख थीं। इन संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य व्यापार और उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करना, निवेश को प्रोत्साहित करना तथा आर्थिक गतिविधियों को संगठित और सुरक्षित बनाना था।[9] इस प्रकार इन वित्तीय संस्थाओं ने औपनिवेशिक भारत की आर्थिक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण सहायक तंत्र के रूप में कार्य किया। औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश एजेंसी हाउस वित्तीय और व्यापारिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र थे। ये एजेंसी हाउस वास्तव में यूरोपीय व्यापारिक घराने थे, जो भारत में व्यापार, बैंकिंग, बीमा तथा निवेश से संबंधित अनेक कार्यों का संचालन करते थे। ये संस्थाएँ ब्रिटेन और भारत के बीच होने वाले व्यापारिक लेन–देन को नियंत्रित करती थीं तथा भारतीय कच्चे माल के निर्यात और ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं के आयात को वित्तीय सहायता प्रदान करती थीं। इसके अतिरिक्त एजेंसी हाउस कई औद्योगिक और व्यावसायिक उद्यमों में निवेश भी करते थे तथा बड़े व्यापारिक घरानों और कंपनियों को ऋण उपलब्ध कराते थे। इस प्रकार वे औपनिवेशिक आर्थिक संरचना में एक महत्वपूर्ण वित्तीय मध्यस्थ के रूप में कार्य करते थे। हालांकि इन संस्थाओं की गतिविधियाँ मुख्यतः ब्रिटिश व्यापारिक हितों की पूर्ति के लिए केंद्रित थीं, फिर भी इनके माध्यम से भारत में पूँजी निवेश और व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार संभव हुआ।[10] इसके साथ–साथ औपनिवेशिक काल में कई बड़ी व्यापारिक कंपनियाँ भी अस्तित्व में आईं, जिन्होंने उद्योगों और व्यापारिक उद्यमों में निवेश किया। ये कंपनियाँ विशेष रूप से चाय, जूट, कपड़ा, कोयला तथा खनिज उद्योगों से जुड़ी हुई थीं। इन कंपनियों ने बड़े पैमाने पर पूँजी निवेश कर औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा दिया और औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान की। चाय बागानों, जूट मिलों तथा कोयला खदानों जैसे क्षेत्रों में विदेशी पूँजी का निवेश मुख्यतः इन्हीं व्यापारिक कंपनियों के माध्यम से हुआ। इस प्रकार ये कंपनियाँ केवल उत्पादन और व्यापार तक ही सीमित नहीं थीं, बल्कि उन्होंने वित्तीय संसाधनों के प्रबंधन और औद्योगिक निवेश में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[11]

औपनिवेशिक काल में बीमा संस्थाओं का विकास भी वित्तीय ढाँचे के विस्तार का एक महत्वपूर्ण पहलू था। बीमा कंपनियाँ व्यापारिक और औद्योगिक गतिविधियों में संभावित जोखिमों को कम करने में सहायक थीं। समुद्री व्यापार, परिवहन तथा औद्योगिक उत्पादन में जोखिम की संभावना अधिक होती थी, इसलिए व्यापारियों और उद्योगपतियों के लिए बीमा सेवाएँ अत्यंत आवश्यक थीं। बीमा संस्थाओं ने जहाजों, माल–सामान, कारखानों तथा अन्य संपत्तियों को बीमा सुरक्षा प्रदान की, जिससे व्यापार और उद्योगों में निवेश करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार बीमा संस्थाएँ भी औद्योगिक और व्यापारिक गतिविधियों को स्थिरता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।[12] इसी काल में भारतीय उद्यमियों द्वारा भी

कुछ स्वदेशी वित्तीय संस्थाओं और बैंकों की स्थापना के प्रयास किए गए। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय व्यापारियों और उद्योगपतियों ने यह महसूस किया कि विदेशी नियंत्रण वाले बैंक और वित्तीय संस्थाएँ भारतीय उद्योगों को पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान नहीं कर रही हैं। इस स्थिति को देखते हुए भारतीय पूँजीपतियों ने अपने स्वयं के बैंक और वित्तीय संस्थाएँ स्थापित करने का प्रयास किया। इन स्वदेशी बैंकों और संस्थाओं का उद्देश्य भारतीय व्यापारियों, कारीगरों और उद्योगपतियों को ऋण और पूँजी उपलब्ध कराना था, ताकि वे अपने उद्योगों और व्यापारिक उद्यमों का विस्तार कर सकें। स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव से इस प्रकार की संस्थाओं की स्थापना को और अधिक प्रोत्साहन मिला और भारतीय समाज में आर्थिक आत्मनिर्भरता की भावना का विकास हुआ। इन स्वदेशी वित्तीय संस्थाओं और बैंकों ने भारतीय उद्योगों के लिए पूँजी संचय और निवेश की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। यद्यपि इनकी क्षमता विदेशी बैंकों और एजेंसी हाउसों की तुलना में सीमित थी, फिर भी इनका योगदान भारतीय उद्यमिता के विकास में महत्वपूर्ण रहा। इन संस्थाओं ने भारतीय उद्योगपतियों को वित्तीय सहायता प्रदान कर स्वदेशी उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया और धीरे–धीरे भारतीय पूँजी के संचय की प्रक्रिया को मजबूत बनाया।[13]

इस प्रकार औपनिवेशिक काल में बैंकिंग संस्थाओं के साथ–साथ विभिन्न वित्तीय संस्थाओं का भी क्रमिक विकास हुआ, जिसने भारत की आर्थिक संरचना को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। एजेंसी हाउस, व्यापारिक कंपनियाँ, बीमा संस्थाएँ तथा स्वदेशी वित्तीय संस्थाएँ सभी ने मिलकर व्यापार, निवेश और औद्योगिक गतिविधियों को वित्तीय आधार प्रदान किया। यद्यपि इन संस्थाओं की गतिविधियाँ औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों से प्रभावित थीं, फिर भी इनके माध्यम से भारत में आधुनिक वित्तीय तंत्र का विकास हुआ और औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक पूँजी और निवेश की व्यवस्था संभव हो सकी।

औद्योगिक विकास में बैंकिंग संस्थाओं की भूमिका

औद्योगिक विकास किसी भी देश की आर्थिक प्रगति और आधुनिकता का महत्वपूर्ण सूचक होता है, और इस विकास को गति प्रदान करने में बैंकिंग संस्थाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। बैंकिंग संस्थाएँ उद्योगों के लिए आवश्यक पूँजी उपलब्ध कराती हैं, निवेश को प्रोत्साहित करती हैं तथा व्यापारिक और औद्योगिक लेन–देन को सुरक्षित और संगठित बनाती हैं। विशेष रूप से औद्योगिक क्षेत्र में मशीनरी की स्थापना, कच्चे माल की खरीद, उत्पादन प्रक्रिया के संचालन तथा व्यापारिक विस्तार के लिए बड़ी मात्रा में वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है, जिसे बैंकिंग प्रणाली के माध्यम से ही पूरा किया जा सकता है।[14] औपनिवेशिक काल में भारत में आधुनिक बैंकिंग संस्थाओं के विकास ने औद्योगिक गतिविधियों के लिए एक संगठित वित्तीय ढाँचा प्रदान किया। यद्यपि इन संस्थाओं की नीतियाँ मुख्यतः ब्रिटिश व्यापारिक हितों से प्रभावित थीं, फिर भी इनके माध्यम से व्यापार और उद्योगों के लिए पूँजी के संचय और वितरण की प्रक्रिया विकसित हुई। इस प्रकार बैंकिंग संस्थाओं ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को प्रभावित किया और भारत में आधुनिक औद्योगिक संरचना के निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण वित्तीय आधार प्रदान किया।[15]

(1) पूँजी उपलब्ध कराना:

औद्योगिक विकास के लिए पर्याप्त पूँजी की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक होती है, क्योंकि किसी भी उद्योग की स्थापना, संचालन और विस्तार के लिए बड़ी मात्रा में वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। उद्योगों को भूमि की व्यवस्था, कारखानों के निर्माण, मशीनों और उपकरणों की खरीद, कच्चे माल की आपूर्ति, श्रमिकों के वेतन, परिवहन तथा उत्पादन और विपणन से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों के लिए निरंतर पूँजी की आवश्यकता होती है। औपनिवेशिक काल में जब भारत में आधुनिक उद्योगों का विकास प्रारंभ हो रहा था, तब पूँजी की व्यवस्था उद्योगपतियों के लिए एक बड़ी चुनौती थी। इस परिस्थिति में बैंकिंग संस्थाओं ने उद्योगों को ऋण, अग्रिम धनराशि तथा अन्य वित्तीय सुविधाएँ प्रदान कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बैंकिंग संस्थाओं के माध्यम से पूँजी का संचय और उसका संगठित वितरण संभव हुआ, जिससे उद्योगों को आवश्यक वित्तीय सहायता प्राप्त होने लगी और औद्योगिक गतिविधियों को स्थिरता मिली।[16] इन संस्थाओं द्वारा उपलब्ध कराए गए ऋण और वित्तीय सहायता ने विशेष रूप से कपड़ा, जूट, चीनी तथा लौह–इस्पात जैसे प्रमुख उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त बैंक व्यापारिक बिलों के विनिमय, अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक ऋण जैसी सुविधाएँ प्रदान करते थे, जिससे उद्योगपतियों को उत्पादन और व्यापारिक गतिविधियों को सुचारु रूप से संचालित करने में सहायता मिलती थी। यद्यपि औपनिवेशिक काल की बैंकिंग व्यवस्था मुख्यतः ब्रिटिश व्यापारिक हितों से प्रभावित थी और भारतीय उद्योगपतियों को

हमेशा समान अवसर नहीं मिलते थे, फिर भी बैंकिंग संस्थाओं के माध्यम से उपलब्ध पूँजी ने औद्योगिक उत्पादन के विस्तार, नए उद्योगों की स्थापना तथा आर्थिक गतिविधियों की वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया और भारत में आधुनिक औद्योगिक ढाँचे के निर्माण की प्रक्रिया को गति प्रदान की।[17]

(2) व्यापार और उद्योग का विस्तारः

औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में व्यापार का विस्तार अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के वितरण और विपणन के लिए एक सुदृढ़ व्यापारिक व्यवस्था की आवश्यकता होती है। औपनिवेशिक काल में बैंकिंग संस्थाओं ने व्यापारिक लेन–देन को अधिक संगठित, सुरक्षित और सुविधाजनक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बैंकों ने व्यापारियों और उद्योगपतियों को विभिन्न प्रकार की वित्तीय सुविधाएँ प्रदान कीं, जैसे – ऋण और अग्रिम धनराशि, व्यापारिक बिलों का विनिमय, धन के सुरक्षित जमा की व्यवस्था तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक धन के हस्तांतरण की सुविधा।[18] इन सेवाओं के माध्यम से व्यापारियों के लिए बड़े पैमाने पर व्यापार करना अपेक्षाकृत सरल और सुरक्षित हो गया। पहले जहाँ व्यापारिक लेन–देन प्रायः नकद धन या पारंपरिक साहूकारों के माध्यम से होता था, वहीं बैंकिंग व्यवस्था के विकास के बाद भुगतान और विनिमय की प्रक्रियाएँ अधिक व्यवस्थित और विश्वसनीय हो गईं। इससे व्यापारिक जोखिमों में कमी आई और व्यापारिक गतिविधियों में स्थिरता आई। बैंकिंग संस्थाओं द्वारा प्रदान की गई वित्तीय सहायता के कारण व्यापारियों को कच्चे माल की खरीद, वस्तुओं के भंडारण, परिवहन और विपणन के लिए आवश्यक पूँजी प्राप्त होने लगी, जिससे व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार संभव हुआ।[19] इसके परिणामस्वरूप घरेलू व्यापार के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय व्यापार में भी वृद्धि हुई, क्योंकि बैंकों और विनिमय संस्थाओं के माध्यम से विदेशी व्यापार से संबंधित भुगतान और विनिमय की प्रक्रियाएँ अधिक सुचारु रूप से संचालित होने लगीं। इस प्रकार बैंकिंग संस्थाओं द्वारा व्यापारिक लेन–देन को सरल और सुरक्षित बनाने से घरेलू तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार दोनों का विस्तार हुआ, जिसने उद्योगों के लिए व्यापक बाजार उपलब्ध कराया और औद्योगिक उत्पादन तथा औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण रूप से प्रोत्साहन दिया।[20]

(3) आधुनिक वित्तीय प्रणाली का विकासः

औपनिवेशिक काल में बैंकिंग व्यवस्था के विकास के साथ भारत में आधुनिक वित्तीय प्रणाली का भी क्रमिक विकास हुआ, जिसने आर्थिक और औद्योगिक गतिविधियों को अधिक संगठित, सुरक्षित और व्यवस्थित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पारंपरिक व्यवस्था में व्यापार और वित्तीय लेन–देन मुख्यतः नकद भुगतान, साहूकारों तथा व्यक्तिगत विश्वास पर आधारित प्रणालियों के माध्यम से संचालित होते थे, जिससे बड़े पैमाने पर व्यापार और उद्योग का संचालन कठिन होता था। आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के आगमन के साथ ही वित्तीय लेन–देन के नए और अधिक सुरक्षित साधनों का उपयोग प्रारंभ हुआ, जिनमें चेक, ड्राफ्ट, विनिमय बिल, बीमा सेवाएँ तथा अन्य बैंकिंग सुविधाएँ प्रमुख थीं। इन साधनों के माध्यम से धन के लेन–देन को अधिक सुरक्षित और सुविधाजनक बनाया गया तथा दूरस्थ क्षेत्रों के बीच आर्थिक गतिविधियों का संचालन सरल हो गया।[21] बैंकिंग संस्थाओं द्वारा प्रदान की गई इन सेवाओं ने व्यापारियों और उद्योगपतियों को वित्तीय सुरक्षा प्रदान की तथा उनके लिए बड़े पैमाने पर आर्थिक लेन–देन करना संभव बनाया। इसके अतिरिक्त बीमा संस्थाओं के विकास ने व्यापारिक और औद्योगिक गतिविधियों में संभावित जोखिमों को कम करने में सहायता की, जिससे निवेश और औद्योगिक उद्यमों को प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार औपनिवेशिक काल में बैंकिंग व्यवस्था के माध्यम से विकसित आधुनिक वित्तीय प्रणाली ने आर्थिक संसाधनों के अधिक प्रभावी उपयोग, पूँजी के संगठित संचय और वितरण तथा व्यापार और उद्योग की गतिविधियों को अधिक व्यवस्थित बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को भी अप्रत्यक्ष रूप से गति प्राप्त हुई।[22]

(4) औद्योगिक निवेश को प्रोत्साहनः

औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में निवेश का विशेष महत्व होता है, क्योंकि किसी भी उद्योग की स्थापना और उसके विस्तार के लिए पर्याप्त वित्तीय निवेश आवश्यक होता है। औपनिवेशिक काल में बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं ने उद्योगों में पूँजी निवेश को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन संस्थाओं के माध्यम से उद्योगपतियों और व्यापारिक उद्यमों को ऋण, अग्रिम धनराशि तथा अन्य वित्तीय सुविधाएँ प्राप्त होने लगीं, जिससे औद्योगिक क्षेत्रों में निवेश की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। बैंकिंग प्रणाली ने पूँजी के संचय और उसके संगठित वितरण की प्रक्रिया को सरल बनाया, जिसके परिणामस्वरूप

उद्योगों में आवश्यक वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता बढ़ी और नए औद्योगिक उद्यमों की स्थापना संभव हो सकी।[23] इसके अतिरिक्त वित्तीय संस्थाओं ने निवेश से जुड़े जोखिमों को कम करने और निवेशकों में विश्वास उत्पन्न करने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। जब उद्योगपतियों और व्यापारियों को यह विश्वास होने लगा कि उन्हें बैंकिंग संस्थाओं के माध्यम से वित्तीय सहायता और सुरक्षा प्राप्त हो सकती है, तब उन्होंने अधिक उत्साह के साथ औद्योगिक क्षेत्रों में निवेश करना प्रारंभ किया। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर औद्योगिक इकाइयों की स्थापना हुई, उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई और औद्योगिक गतिविधियों का विस्तार होने लगा। इस प्रकार बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रदान किए गए वित्तीय सहयोग और निवेश के प्रोत्साहन ने औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करने के साथ–साथ औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को भी महत्वपूर्ण रूप से गति प्रदान की।[24]

(5) स्वदेशी उद्योगों को सहायताः

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव से भारतीय समाज में आर्थिक आत्मनिर्भरता और स्वदेशी उद्योगों के विकास के प्रति एक व्यापक जागरूकता उत्पन्न हुई। इस आंदोलन ने केवल विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान ही नहीं किया, बल्कि भारतीय पूँजी, श्रम और संसाधनों के आधार पर स्वदेशी उद्योगों और संस्थानों की स्थापना को भी प्रोत्साहित किया। इसी परिप्रेक्ष्य में अनेक भारतीय बैंकों और वित्तीय संस्थाओं की स्थापना हुई, जिनका उद्देश्य भारतीय व्यापारियों, उद्यमियों और उद्योगपतियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना था। इन बैंकों ने ऋण, पूँजी निवेश तथा अन्य वित्तीय सेवाओं के माध्यम से स्वदेशी उद्योगों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणामस्वरूप भारतीय पूँजीपतियों को औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर मिला और वे कपड़ा, जूट, चीनी, खनन तथा लघु उद्योगों जैसे विभिन्न क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने लगे। इस प्रक्रिया ने न केवल भारतीय उद्योगों के विस्तार को गति दी, बल्कि औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के भीतर एक स्वदेशी आर्थिक आधार के निर्माण में भी योगदान दिया, जिससे राष्ट्रीय आर्थिक चेतना और औद्योगिक आत्मनिर्भरता को बल मिला।[25]

औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में बैंकिंग संस्थाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और आधारभूत रही है। बैंकों ने उद्योगों को पूँजी उपलब्ध कराकर उत्पादन, विस्तार और तकनीकी उन्नयन की संभावनाओं को सशक्त बनाया। इसके साथ ही बैंकिंग प्रणाली ने बचत को निवेश में परिवर्तित करने का माध्यम प्रदान किया, जिससे नए उद्योगों की स्थापना और पुराने उद्योगों के आधुनिकीकरण को गति मिली। वित्तीय सहायता, ऋण सुविधाएँ, निवेश प्रोत्साहन तथा उद्यमियों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान कर बैंकिंग संस्थाओं ने औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को स्थिर और संगठित आधार दिया। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि बैंकिंग व्यवस्था न केवल आर्थिक विकास का सहायक तंत्र है, बल्कि औद्योगिक प्रगति का एक प्रमुख प्रेरक भी है।[26]

औपनिवेशिक बैंकिंग व्यवस्था की सीमाएँ

यद्यपि औपनिवेशिक काल में बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं का विकास हुआ और उन्होंने औद्योगिक गतिविधियों को कुछ हद तक वित्तीय सहायता प्रदान की, फिर भी इस व्यवस्था की कई गंभीर सीमाएँ थीं, जिनका प्रभाव भारतीय उद्योगों और व्यापक अर्थव्यवस्था पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उस समय स्थापित अधिकांश बैंक ब्रिटिश पूँजीपतियों, यूरोपीय व्यापारिक घरानों तथा औपनिवेशिक प्रशासन के प्रभाव में संचालित होते थे। इन बैंकों की नीतियाँ इस प्रकार बनाई जाती थीं कि वे मुख्यतः ब्रिटिश व्यापारिक हितों की रक्षा करें और औपनिवेशिक शासन की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करें। परिणामस्वरूप बैंकिंग प्रणाली का उद्देश्य भारत के स्वदेशी उद्योगों का समुचित विकास करना नहीं, बल्कि ब्रिटिश व्यापारिक गतिविधियों को सुविधाजनक बनाना था। यही कारण था कि बैंक ऋण वितरण में भारतीय उद्योगपतियों की अपेक्षा यूरोपीय व्यापारियों और विदेशी कंपनियों को प्राथमिकता देते थे।[27] भारतीय उद्यमियों और व्यापारियों के लिए बैंकिंग प्रणाली से पर्याप्त वित्तीय सहायता प्राप्त करना अत्यंत कठिन था। अधिकांश भारतीय उद्योगों को जोखिमपूर्ण और अस्थिर मानकर बैंक उन्हें ऋण देने में हिचकिचाते थे। यदि कभी ऋण दिया भी जाता था, तो उसकी शर्तें अत्यंत कठोर होती थीं, जिनका पालन करना छोटे या मध्यम स्तर के भारतीय उद्योगपतियों के लिए आसान नहीं था। इस कारण भारतीय पूँजीपतियों के लिए उद्योगों की स्थापना, विस्तार और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया बाधित होती रही। दूसरी ओर, विदेशी कंपनियाँ और यूरोपीय व्यापारिक घराने बैंकिंग सुविधाओं का भरपूर लाभ उठाकर अपने उद्योगों और व्यापारिक गतिविधियों को तेजी से विकसित करने में सक्षम हुए। इसके अतिरिक्त औपनिवेशिक बैंकिंग व्यवस्था का भौगोलिक विस्तार भी अत्यंत सीमित था। अधिकांश बैंक केवल प्रमुख

बंदरगाहों और बड़े व्यापारिक नगरों – जैसे कलकत्ता, बंबई और मद्रास तक ही सीमित थे। ग्रामीण क्षेत्रों, छोटे कस्बों तथा कृषि और कुटीर उद्योगों से जुड़े क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का लगभग अभाव था। इस कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में संगठित वित्तीय सहायता उपलब्ध नहीं हो पाती थी। ग्रामीण कारीगरों, छोटे उत्पादकों और किसानों को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्थानीय साहूकारों, महाजनों और बनियों पर निर्भर रहना पड़ता था, जो प्रायः अत्यधिक ब्याज दरों पर ऋण प्रदान करते थे। इस व्यवस्था ने ग्रामीण समाज में आर्थिक शोषण और ऋणग्रस्तता की समस्या को और अधिक गहरा कर दिया।[28]

कुटीर और पारंपरिक उद्योगों के संदर्भ में भी औपनिवेशिक बैंकिंग प्रणाली का योगदान अत्यंत सीमित रहा। वस्त्र, हस्तशिल्प, धातु–शिल्प, लकड़ी के काम तथा अन्य पारंपरिक उद्योगों को आधुनिक वित्तीय सहायता प्राप्त नहीं हो सकी, जिसके कारण वे औद्योगिक प्रतिस्पर्धा में धीरे–धीरे पिछड़ते चले गए। वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश उद्योगों से निर्मित सस्ते मशीन–निर्मित वस्त्रों और उत्पादों के आगमन ने इन पारंपरिक उद्योगों की स्थिति को और अधिक कमजोर कर दियज्ञ[29] यदि बैंकिंग प्रणाली इन उद्योगों को पर्याप्त वित्तीय सहायता और संरक्षण प्रदान करती, तो संभवतः उनका विकास और आधुनिकीकरण संभव हो सकता था। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक बैंकिंग व्यवस्था का लाभ व्यापक भारतीय समाज और उद्योगों तक समान रूप से नहीं पहुँच सका। यह व्यवस्था मुख्यतः बड़े व्यापारिक घरानों, विदेशी कंपनियों और ब्रिटिश व्यापारिक हितों के पक्ष में कार्य करती रही, जबकि भारतीय उद्योगपतियों, ग्रामीण अर्थव्यवस्था और कुटीर उद्योगों को अपेक्षित समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। परिणामस्वरूप भारत की आर्थिक संरचना में असंतुलन उत्पन्न हुआ और औद्योगिक विकास की प्रक्रिया भी सीमित एवं असमान बनी रही।[30]

भारतीय औद्योगिक विकास पर प्रभाव

औपनिवेशिक काल में बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं के विकास की प्रक्रिया कई सीमाओं और असमानताओं से युक्त थी, फिर भी इसका भारतीय औद्योगिक विकास पर दीर्घकालीन और व्यापक प्रभाव पड़ा। बैंकिंग संस्थाओं की स्थापना और उनके विस्तार से भारत में एक संगठित तथा आधुनिक वित्तीय ढाँचे का क्रमिक निर्माण हुआ।[31] पहले जहाँ व्यापार और उद्योग मुख्यतः पारंपरिक साहूकारों, महाजनों और निजी पूँजी पर निर्भर रहते थे, वहीं बैंकिंग प्रणाली के विकास ने आर्थिक गतिविधियों को एक व्यवस्थित संस्थागत आधार प्रदान किया। इस परिवर्तन के कारण व्यापारिक और औद्योगिक लेन–देन में स्थिरता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता का विकास हुआ। बैंकिंग व्यवस्था ने धन के संचय, संरक्षण और निवेश के लिए एक संगठित माध्यम उपलब्ध कराया, जिससे पूँजी के प्रवाह को अधिक व्यवस्थित और प्रभावी बनाया जा सका। बैंकिंग संस्थाओं के विस्तार का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि औद्योगिक निवेश की प्रक्रिया को नई गति मिली। बैंकों के माध्यम से उद्यमियों को ऋण, अग्रिम पूँजी और वित्तीय सहायता प्राप्त होने लगी, जिससे वे नए उद्योगों की स्थापना और पुराने उद्योगों के विस्तार के लिए प्रोत्साहित हुए।[32] विशेष रूप से उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कपड़ा उद्योग, जूट उद्योग, चाय उद्योग, कोयला खनन, रेलवे निर्माण तथा लौह–इस्पात जैसे आधुनिक उद्योगों के विकास में वित्तीय संस्थाओं की अप्रत्यक्ष भूमिका रही। यद्यपि इन उद्योगों में प्रारम्भिक निवेश का बड़ा भाग विदेशी पूँजी से आया, फिर भी बैंकिंग प्रणाली ने व्यापारिक लेन–देन को सुगम बनाकर औद्योगिक गतिविधियों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया। इससे उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की खरीद, तैयार माल के वितरण और व्यापारिक भुगतान की प्रक्रिया अधिक सुव्यवस्थित हो सकी।[33]

इसके अतिरिक्त बैंकिंग व्यवस्था ने व्यापार और उद्योग के विस्तार के लिए आवश्यक वित्तीय साधनों को उपलब्ध कराने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। बैंकिंग प्रणाली के माध्यम से व्यापारियों और उद्योगपतियों को नकदी प्रबंधन, ऋण सुविधा, बिल ऑफ एक्सचेंज, जमा और भुगतान की सुरक्षित व्यवस्था जैसी सेवाएँ मिलने लगीं। इन सुविधाओं के कारण व्यापारिक गतिविधियों का दायरा बढ़ा और विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक संबंध अधिक सुदृढ़ हुए। बंदरगाह नगरों, व्यापारिक केंद्रों और औद्योगिक क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं की उपलब्धता ने व्यापार को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाजारों से जोड़ने में भी सहायता की।[34] परिणामस्वरूप भारतीय उद्योगों के लिए नए बाजारों तक पहुँच बनाना संभव हुआ, जिससे औद्योगिक उत्पादन और व्यापारिक गतिविधियों में वृद्धि हुई। बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं के विकास से बचत और निवेश के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध भी स्थापित हुआ। समाज के विभिन्न वर्गों की छोटी–बड़ी बचतों को बैंकों के माध्यम से संगठित रूप से एकत्रित किया जाने लगा और इन्हें उद्योगों, व्यापारिक गतिविधियों तथा अन्य आर्थिक क्षेत्रों में निवेश के रूप में उपयोग किया गया। इस प्रक्रिया

ने पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित किया, जो औद्योगिक विकास का एक अनिवार्य आधार होता है। इसके साथ ही बैंकिंग प्रणाली ने आर्थिक प्रबंधन की आधुनिक पद्धतियों – जैसे लेखांकन, वित्तीय नियोजन, पूँजी प्रबंधन और जोखिम नियंत्रण को भी प्रोत्साहित किया। इससे भारतीय व्यापारिक और औद्योगिक वर्ग में आर्थिक अनुशासन तथा संगठित प्रबंधन की प्रवृत्ति विकसित हुई।[35]

हालाँकि यह भी सत्य है कि औपनिवेशिक काल में बैंकिंग व्यवस्था का लाभ समाज के सभी वर्गों और क्षेत्रों तक समान रूप से नहीं पहुँच पाया। ग्रामीण क्षेत्रों, छोटे उत्पादकों और कुटीर उद्योगों को इस व्यवस्था से अपेक्षित लाभ नहीं मिल सका। इसके बावजूद बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं की स्थापना ने भारत में आधुनिक आर्थिक संरचना के विकास के लिए एक प्रारंभिक आधार अवश्य तैयार किया। इसी आधार पर आगे चलकर स्वदेशी बैंकों की स्थापना, भारतीय पूँजीपतियों का उदय और स्वतंत्रता के बाद के औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को गति मिली। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सीमाओं के बावजूद बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं के विकास ने भारतीय औद्योगिक प्रगति को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया और देश को पारंपरिक आर्थिक ढाँचे से आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था की ओर अग्रसर करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।[36]

समग्र रूप से देखा जाए तो औपनिवेशिक काल में बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं का विकास भारतीय औद्योगिक प्रगति की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक चरण सिद्ध हुआ। यद्यपि इन संस्थाओं की स्थापना और संचालन का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी आर्थिक हितों की पूर्ति करना तथा भारत के संसाधनों और व्यापार को ब्रिटिश नियंत्रण में बनाए रखना था, फिर भी इन संस्थाओं के माध्यम से भारत में एक आधुनिक और संगठित वित्तीय प्रणाली की नींव पड़ी। बैंकिंग व्यवस्था के विकास से पूँजी के संचय, संरक्षण और निवेश की प्रक्रिया अधिक व्यवस्थित हुई, जिससे उद्योगों, व्यापार और वाणिज्यिक गतिविधियों को एक संस्थागत आधार प्राप्त हुआ। इसके माध्यम से औद्योगिक निवेश को प्रोत्साहन मिला, व्यापारिक लेन–देन अधिक सुरक्षित और संगठित बने तथा उद्योगों के विस्तार के लिए आवश्यक वित्तीय साधनों की उपलब्धता संभव हुई। यद्यपि इस व्यवस्था का लाभ प्रारंभिक काल में मुख्यतः विदेशी कंपनियों और बड़े व्यापारिक घरानों तक ही सीमित रहा, फिर भी इसने भारत में औद्योगिकीकरण की दिशा में एक प्रारंभिक आधार तैयार किया। आगे चलकर स्वदेशी आंदोलन और भारतीय उद्यमियों के प्रयासों से भारतीय बैंकों की स्थापना भी हुई, जिसने स्वदेशी उद्योगों को वित्तीय सहयोग प्रदान किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं के व्यापक विस्तार, राष्ट्रीयकरण तथा ग्रामीण क्षेत्रों तक बैंकिंग सेवाओं के प्रसार के माध्यम से इस प्रणाली को अधिक जनोन्मुख और विकासोन्मुख बनाया। परिणामस्वरूप औद्योगिक विकास, पूँजी निर्माण और आर्थिक प्रगति को नई गति प्राप्त हुई। इस प्रकार कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक काल में विकसित बैंकिंग और वित्तीय ढाँचे ने, अपनी सीमाओं के बावजूद, आधुनिक भारत के औद्योगिक और आर्थिक विकास की आधारशिला रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

संदर्भ

1. चंद्र, बिपिन, *आधुनिक भारत का इतिहास,* ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2016, पृ. 215–216.
2. शर्मा, आर.एस., *भारत का आर्थिक इतिहास,* मैकमिलन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 133.
3. दत्त, रोमेश चंद्र, *भारत का आर्थिक इतिहास (औपनिवेशिक काल),* पब्लिकेशन डिवीजन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 279.
4. हबीब, इरफान, *भारतीय अर्थव्यवस्था का इतिहास,* तुलिका बुक्स, नई दिल्ली, 2011, पृ. 164–165.
5. देसाई, ए.आर., *भारत में राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,* पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 2005, पृ. 97–98.
6. वही, पृ. 143.
7. टॉमलिन्सन, बी.आर., *भारत की औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2013, पृ. 202.
8. चौधरी, राय, तपन, *भारत का आर्थिक इतिहास,* ओरिएंट लॉन्गमैन, कोलकाता, 2004, पृ. 189–190.
9. कुमार, धर्म, *कैम्ब्रिज आर्थिक इतिहास : भारत,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2006, पृ. 233–234.

10. चंद्र, बिपिन, *भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद,* अनमोल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 155.
11. सरकार, सुमित, *आधुनिक भारत,* मैकमिलन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 223–224.
12. गुहा, रामचंद्र, *भारत : गांधी के बाद,* पेंगुइन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 46.
13. वही, पृ. 166–167.
14. घोष, अमित, *भारत में बैंकिंग का इतिहास,* एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 1978, पृ. 92–93.
15. सेन, सुकुमार, *भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास,* विश्वभारती प्रकाशन, कोलकाता, 2001, पृ. 144–145.
16. मुखर्जी, राधाकमल, *भारतीय आर्थिक संरचना,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृ. 202.
17. गुप्ता, मनोज, *पूर्वी भारत का आर्थिक इतिहास,* शोध प्रकाशन, पटना, 2005, पृ. 108–109.
18. गुहा, रामचंद्र, *पूर्वोक्त,* पृ. 173.
19. बसु, कौशिक, *भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्लेषण,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010, पृ. 211.
20. रुद्र, अशोक, *भारतीय आर्थिक विकास,* सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 134–135.
21. जैन, पी.सी., *भारत की बैंकिंग प्रणाली,* रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2012, पृ. 89.
22. चंद्र, बिपिन, *पूर्वोक्त,* पृ. 98.
23. दत्त, रुद्र और सुंदरम, के.पी.एम., *भारतीय अर्थव्यवस्था,* एस. चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली, 2018, पृ. 156–157.
24. सिंह, आर.के., *भारत में औद्योगिक विकास,* दीप एंड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 202.
25. कुमार, धर्म, *भारत का आर्थिक इतिहास (1850–1947),* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2009, पृ. 244.
26. मेहता, जे.एल., *आधुनिक भारत का इतिहास,* स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2010, पृ. 199.
27. चौधरी, के.एन., *भारत का व्यापारिक इतिहास,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2005, पृ. 121.
28. मुखर्जी, सुभाष, *भारतीय औद्योगिक इतिहास,* सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 177–178.
29. वही, पृ. 165.
30. पाटिल, बी.आर., *भारत में बैंकिंग का विकास,* हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 2013, पृ. 142–143.
31. त्रिपाठी, डी.एन., *भारतीय औद्योगिकीकरण का इतिहास,* विकास प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 188–189.
32. चौधरी, के.एन., पूर्वोक्त, पृ. 173.
33. राय, बिपन बिहारी, *भारत का आर्थिक इतिहास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 153–154.
34. चटर्जी, पार्थ, *औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का अध्ययन,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2012, पृ. 211.
35. मुखर्जी, सुभाष, *पूर्वोक्त,* पृ. 96.
36. घोषाल, यू.एन., *भारत का आर्थिक इतिहास,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2003, पृ. 179.